पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार कलश २७१
प्रवच रत्नाकर भाग ११, पृष्ट ५७१-५७७
राजकोट, सितंबर-अक्टूबर १९९०
प्रवचन LA ३९४

यह श्री समयसार कलश नंबर २७१ के ऊपर अध्यात्म सत्पुरुष पूज्य श्री कानजी स्वामी के मार्मिक प्रवचन। प्रवचन रत्नाकर भाग-११। ये ग्यारह भाग प्रकाशित हो गये हैं न? उसमें से ही यह लिया है, अलग। उसमें अक्षर छोटे हैं ग्यारहवें भाग में। और ये बड़े अक्षर पढ़े जा सकते हैं। इसलिये हमने अलग से कराया है उसमें से। रत्नाकर भाग-११, पृष्ठ ५७१-५७७ तक। यह अभी हिम्मतनगर में छपवाई है बुकलेट।

समयसार कलश-२७१। ज्ञानमात्र भाव स्वयं ही ज्ञान है। ज्ञानमात्र अर्थात् क्या? कि आत्मा। आत्मा का जो स्वभाव है, आत्मा का जो भाव है वह स्वयं ही ज्ञान है। आत्मा स्वयं ही ज्ञान है। **ज्ञानमात्र भाव** अर्थात् आत्मा **स्वयं ही ज्ञान है।** आत्मा का दूसरा नाम ज्ञान है। आत्मा का एक नाम आत्मा तो है। लेकिन आत्मा का दूसरा नाम ज्ञान है। आत्मा स्वयं ही ज्ञान है, ऐसा आया है न? स्वयं ही ज्ञान है, एक। अब दूसरा, (आत्मा) **स्वयं ही अपना ज्ञेय है**। ये (पर-पदार्थ) ज्ञेय नहीं हैं।

मुमुक्षुः- ना। ज्ञान की पर्याय में स्वयं ही ज्ञात होता है।

उत्तरः- स्वयं ही ज्ञात होता है। इसलिये स्वयं, आत्मा ही - उसका दूसरा नाम ज्ञेय है। एक नाम ज्ञान है। दूसरा नाम (ज्ञेय) है। अब वह व्याख्या आयेगी। किसलिए ज्ञान है? किसलिए ज्ञेय है? लेकिन आत्मा का एक नाम ज्ञान है, दूसरा नाम स्वयं ही ज्ञेय है।

अब तीसरा, और **स्वयं अपना ही ज्ञाता है।** इन (पर-पदार्थों का) ज्ञाता नहीं है। **स्वयं ही अपना ज्ञाता** अर्थात् जाननहार । स्वयं अपना ही जाननेवाला है। ऐसे अर्थ का काव्य अब कहते हैं। यह संस्कृत है। अमृतचंद्राचार्य के समयसार में से। बोलो बहन संस्कृत:

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव ।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ।।२७१।।

उसका **श्लोकार्थः-** जो समयसार में है न, वह कॉपी-टु-कॉपी इसमें लिया है। **श्लोकार्थः- जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ। जो यह ज्ञानमात्र भाव** अर्थात् आत्मा, ज्ञानमय आत्मा ऐसा जो मैं, वह **मैं हूँ**। **वह**, वह अर्थात् यह आत्मा, **ज्ञेयों के ज्ञानमात्र ही नहीं जानना ।** इसे (पर-पदार्थ को) जाननेवाला है ऐसा मैं नहीं हूँ। मूल बात है मूल।

मुमुक्षुः- अर्थात् जब ज्ञेय ज्ञात होता है तब मैं नहीं हूँ।

उत्तर:- उसका (पर का) जाननेवाला मैं नहीं। उसका (पर का) जाननेवाला मैं नहीं। मैं कैसा हूँ? कि ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ। लेकिन कैसा हूँ? कि (पर) ज्ञेयों को जाने ऐसा मैं नहीं हूँ। इन (पर) ज्ञेयों को जाने ऐसा मैं नहीं हूं। इस ज्ञेय को (आत्मा को) जाने ऐसा तो हूँ।

मुमुक्षु:- ऐसा ही हूँ।

मुमुक्षु:-स्वज्ञेय को जानूं ऐसा मैं हूँ।

उत्तर:- ऐसा मैं हूँ। पर ज्ञेय को जानूं ऐसा मेरा स्वभाव नहीं है।

मुमुक्षु:- मेरा स्वभाव नहीं है।

उत्तर:- मेरा स्वभाव नहीं है।

मुमुक्षु:- पर का निषेध कर दिया ।

उत्तर:- अंदर में जिसे जाना हो न? जिसे आत्मदर्शन करना हो उसकी बात है। वरना तो व्यवहार की बातें तो शास्त्र में लाखों करोड़ों आती हैं, समझ गये?

मुमुक्षु:- दृष्टि कैसे करनी?

उत्तर:- दृष्टि कैसे करनी आत्मा की? आत्मा का अनुभव कैसे करना? अनंतकाल से उसने यह काम नहीं किया। सब कुछ किया उसने लेकिन आत्मा को नहीं जाना। जाननहार को नहीं जाना। समझ गये? वह कैसे जानने में आये? उसकी इसमें विधि है पूरी। अनुभव की विधि बतायी है। **ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ वह** अर्थात् यह मेरा आत्मा। **वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र**, अर्थात् ज्ञेयों को जाने इतना मात्र आत्मा का स्वभाव नहीं है। **(परंतु)** अब कहते हैं। **(परंतु) ज्ञेयों के आकार रूप होनेवाले ज्ञान की कल्लोलों के रूप में परिणमता हुआ वह**, अर्थात् जो अपने ज्ञान में ज्ञेय जानने में आते हैं तब ज्ञेय को जाननेवाला ऐसा नहीं। लेकिन ज्ञेय जिसमें जानने में आते हैं ऐसा जो ज्ञान, वह ज्ञान कि जिसमें आत्मा जानने में आता है। फिर उसमें आत्मा ज्ञात होता है ऐसा, वे (पर-पदार्थ) नहीं।

मुमुक्षु :- ज्ञान तो आत्मा का है।

उत्तर :- आत्मा का है न? ज्ञेय का कहाँ है? **ज्ञेयों के आकार से होनेवाले ज्ञान की कल्लोलों के रूप** अर्थात् पर्यायोंरूप **परिणमित होता हुआ वह**, कल्लोलें अर्थात् पर्याय। पर्याय, ज्ञान की पर्याय, परिणमन, उसका नाम कल्लोल कहलाता है। जैसे समुद्र में तरंगें उठती हैं।

मुमुक्षु:- तरंगें उठती हैं।

उत्तर:- तरंगें उठती हैं, वे कल्लोल कहलाती हैं। उसीप्रकार यह ज्ञान आत्मा को जानता है, समझ गये। उन पर्यायों को कल्लोलें कहा जाता है। वह, **वह ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय**, आहाहा! तीनों को अभेद कर दिया। ज्ञान भी मैं, ज्ञेय भी मैं, और ज्ञाता भी मैं। उन-मय। तीन धर्म हैं आत्मा में, उन-मय। **वस्तुमात्र जानना**, आहाहा! ज्ञान भी मैं, ज्ञेय भी मैं, और यह ज्ञाता भी मैं। इन तीनों की व्याख्या आयेगी। अभी संक्षिप्त में है। बाद में उसके ऊपर के गुरुदेव के प्रवचन बहुत सुंदर आयेंगे। **वस्तुमात्र जानना चाहिये (अर्थात् स्वयं ही ज्ञान**, देखो! वह आया था न? ज्ञानमात्र?

मुमुक्षु:- ज्ञानमात्र है।

उत्तर:- वह आया था न? वह। **(स्वयं ही ज्ञान, स्वयं ही ज्ञेय और स्वयं ही ज्ञाता - इसप्रकार**

ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप -मय तीनों का एकरूप एकमय।

मुमुक्षुः- अभेद!

उत्तरः- एकमय। यह तो भेद से समझाते हैं वरना भेद उसमें है नहीं, अभेद। अभेद बताया इसप्रकार। **ज्ञातारूप**। **ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावो युक्त वस्तुमात्र जानना)।** ऐसी वस्तु मेरी है। मैं ही ज्ञान, मैं ही ज्ञेय और मैं ही ज्ञाता। मुझे कहीं बाहर जाना रहा नहीं।

मुमुक्षुः- सभी परद्रव्यों का निषेध हो गया।

उत्तरः- निषेध हो गया।

मुमुक्षुः- अपने में आ गया।

उत्तरः- पर को जानने का निषेध हो गया। अपने में आ गया, आहाहा! अभी हम तो यह संक्षेप में लेते हैं। फिर गुरुदेव के प्रवचन इसके ऊपर विस्तार से आयेंगे। संक्षेप में लेख है।

भावार्थः- ज्ञानमात्र भाव, अब ज्ञान की व्याख्या करते हैं। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता, तीन शब्द थे न? तो ज्ञान की व्याख्या, पहले शब्द की करते हैं। कि **ज्ञानमात्र भाव ज्ञातृक्रियारूप होने से ज्ञानस्वरूप है।** आत्मा में जानने की क्रिया होती है। जानने की क्रिया होती है इसलिये आत्मा का नाम ज्ञान है। जिसमें जानने की क्रिया होती है, उसका नाम ज्ञान है। इसलिये मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। **ज्ञानमात्र भाव ज्ञातृक्रियारूप होने से**, आहाहा! करने की क्रिया नहीं होती । जानने की क्रिया होती है। राग को करे और पर को करे ऐसी क्रिया नहीं।

मुमुक्षुः- उसका स्वभाव ही है जानना-जानना।

उत्तरः- हाँ! जानना-जानना-जानना, वह उसका स्वभाव है। **ज्ञातृक्रियारूप होने से**,ऐसा! (नया) हो जाने से नहीं, (पहले से) होने से। तीनोंकाल, होने से। (नया) हो जाता है, हो जाना और होगा ऐसा नहीं, होने से।

मुमुक्षुः- सदा है।

उत्तरः- बस!

मुमुक्षुः- करने से या होने से।

उत्तरः- होने से। करने से या कोई करे तो हो, ऐसा नहीं। स्वयं करे तो हो, ऐसा नहीं। स्वभाव ही है। स्वभाव ही है, बस!

मुमुक्षुः- होनेरूप जाहिर कर दिया।

उत्तरः- होनेरूप जाहिर कर दिया। बस! है अनादि अनंत।

मुमुक्षुः- जैसा है ऐसा जाहिर कर दिया।

उत्तरः- जैसा है ऐसा जाहिर किया! कि आत्मा कैसा है? कि जानने के स्वभाव से भरा हुआ है। वह कहीं राग को करे और कर्म को बांधे, ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है और पर को जाने ऐसा भी (आत्मा का) स्वभाव नहीं है।

मुमुक्षुः- अस्ति स्थापित की है कि ऐसा ही हूँ।

उत्तरः- बस! यहाँ से इसमें मूल में ऐसा कहना है, समझ गये? **ज्ञातृक्रियारूप होने से**

ज्ञानस्वरूप है, आहाहा! मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। क्यों ज्ञानस्वरूप हूँ? क्योंकि मेरे में जानने की क्रिया होती है। इसलिये मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। और जिनमें जानने की क्रिया नहीं होती वे तो जड़ पदार्थ हैं, वो मैं नहीं हूँ। यह देह मेरा नहीं है, क्योंकि इसमें जानने की क्रिया नहीं होती। इसलिये यह चीज मेरी नहीं है, इसप्रकार! और राग भी मेरी चीज नहीं है। क्योंकि उसमें जानने की क्रिया नहीं होती। जिसमें जानने की क्रिया होती है, उसका नाम ज्ञान और वह आत्मा का स्वरूप है, ऐसा!

ज्ञानमात्रभाव ज्ञातृक्रियारूप होने से ज्ञानस्वरूप है। **फिर**, अब ज्ञेय का बोल लेते हैं। पहले ज्ञान का बोल लिया। अब ज्ञेय। **और, वह स्वयं ही निम्नप्रकार से ज्ञेयरूप है।** आत्मा स्वयं ही ज्ञेयरूप है, वह आयेगा। **बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न हैं।** ये (पर) ज्ञेय जो हैं वे आत्मा से अलग हैं। और आत्मा स्वयं ही ज्ञेय है। इसलिये तुझे बाहर जाना या देखना कहाँ रहा? तू ही जाननहार है और तू ही ज्ञात हो रहा है, इसप्रकार! **बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न हैं, ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते।** राग-द्वेष, शरीर, मकान, दुकान कहीं इस ज्ञान में नहीं आते हैं। वे तो भिन्न हैं- भिन्न हैं। **ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते।**

ज्ञेयों के आकार की झलक अर्थात् प्रतिभास। जैसा ज्ञेय होता है, जैसे दर्पण में अग्नि सामने हो तो अग्नि का प्रतिभास होता है स्वच्छता में, पेड़ हो तो पेड़ का प्रतिभास होता है, मोर हो तो मोर का प्रतिभास होता है। उसीप्रकार यह ज्ञान है दर्पण के स्थान पर, तो उसमें ज्ञेय झलकते हैं, प्रतिभासित होते हैं। उसमें प्रतिभासित होते हैं, उसमें आते नहीं हैं। उसकी स्वच्छता में भासित होते हैं। **ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में पड़ने पर ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है।**। क्या कहते हैं? यह मुद्दे की बात है। कि ज्ञेय ज्ञान में जानने में आने पर, जीव को ऐसा भासित होता है कि ज्ञान ज्ञेयाकाररूप हो गया। राग-द्वेष ज्ञात होता है, सुख-दुःख ज्ञात होता है, शरीर ज्ञात होता है, तो ज्ञान में जब ज्ञात होते हैं तब ज्ञान ज्ञेयाकार हुआ ऐसा दिखता है, हुआ नहीं है।

मुमुक्षुः- ऐसा लगता है कि एकमेक हो गया है।

उत्तरः- एकमेक हो गया, लेकिन एकमेक होता नहीं है। क्योंकि ज्ञेय भिन्न हैं और ज्ञान भिन्न है। वे भले झलकते हों लेकिन उस-रूप होता नहीं है। जैसे कि स्फटिकमणि में लाल फूल प्रतिभासित होता है लेकिन स्फटिकमणि लाल नहीं होता। ऐसा कहते हैं कि ज्ञान में, ज्ञेयों के आकार के अनुरूप ही परिणमता हुआ वह **ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है।**। वह दिखता है न जो? वह ऊपरी दृष्टि तेरी मिथ्या है। वह तो ज्ञानाकार है, वह ज्ञेयाकार नहीं होता। वह ज्ञेय को जाननेरूप परिणमता ही नहीं है। वे ज्ञात होते हैं वह बात सच है लेकिन उनको जाननेरूप परिणमता नहीं है।

मुमुक्षुः- ज्ञेय को जाननेरूप परिणमता नहीं है लेकिन अपना ज्ञान ही ज्ञात होता है।

उत्तरः- अपना ज्ञान ही ज्ञात होता है। अपना आत्मा ज्ञात होता है। भले ही (ज्ञेय) उसमें प्रतिभासें, वे ज्ञात हों, लेकिन उनको जानता नहीं। वे ज्ञात हों, भले प्रतिभासें, लेकिन मैं उन्हें जानता नहीं। मैं तो मुझे जानता हूँ।

मुमुक्षुः- मुझे तो मेरे ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है।

उत्तरः- पर्याय ज्ञात होती है अथवा आगे बढ़कर कहो तो ज्ञायक ज्ञात होता है। आत्मा ज्ञात होता है। भेद से ज्ञान की पर्याय और अभेद से ज्ञायक ज्ञात होता है। भेद से ज्ञानी समझाते हैं कि तुझे ज्ञेय

नहीं ज्ञात होते, तेरी ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है। ऐसा कहते हैं, समझ गये? लेकिन ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है ऐसा जहाँ आता है... वह ज्ञान की पर्याय कब कहलाती है? ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है वह कब कहलाती है? कि ज्ञान में आत्मा जानने में आये तो।

मुमुक्षुः- तो यथार्थ है।

उत्तरः- मुद्दे की बात है, समझ में आया? समझ में आया? ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है ऐसा कोई कहे। ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है न? तो उस ज्ञान में आत्मा ज्ञात होता हो तो उसका नाम ज्ञान और आत्मा न ज्ञात होता हो तो उसका नाम अज्ञान है।

मुमुक्षुः- तो अज्ञान हो गया वापस।

उत्तरः- भले ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है, चलो भाई! कोई बात नहीं । तो ज्ञान किसका नाम कहा जाता है? कि जिसमें आत्मा ज्ञात हो तो उसका नाम ज्ञान और उस ज्ञान में आत्मा ज्ञात न हो तो- तो अज्ञान हो गया। ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है ऐसा आयेगा न? तो वह ज्ञायक में आ जायेगा क्योंकि ज्ञान तो आत्मा का है।

मुमुक्षुः- उस पर में से निषेध होकर अपने में आ जायेगा।

उत्तरः- अपने में आ जायेगा।

मुमुक्षुः- मैं और मेरा ज्ञान।

उत्तरः- मैं और मेरा ज्ञान बस! उसमें आ जायेगा। नजदीक आ गया बहुत। **ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है परंतु वे ज्ञान की ही कल्लोलें (तरंगें) हैं।** वह तो ज्ञान ही ज्ञात होता है, ज्ञेय नहीं ज्ञात होता। भले ही (ज्ञेय) उसमें प्रतिभासें, लेकिन मेरा लक्ष उनके ऊपर नहीं है। मेरा लक्ष तो आत्मा के ऊपर है। जिसके ऊपर लक्ष है वह ज्ञात होता है, ज्ञेय के ऊपर लक्ष नहीं है मेरा इसलिये मुझे वो ज्ञात नहीं होता, ऐसे! **वे ज्ञानतरंगें ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं।** ज्ञान की पर्यायें ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं। लेकिन ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है न? तो ज्ञान की पर्याय कब कहलाती है? नाम उसका कब पड़ता है? कि ज्ञान आत्मा को जानता हो तो वह ज्ञान की पर्याय। शरीर को जानता हो और पर को जानता हो तो वह ज्ञान की पर्याय नहीं, वह तो अज्ञान हो गया। कि तुम्हें तुम्हारे ज्ञान की पर्याय में क्या ज्ञात होता है? कि पुत्री ज्ञात होती है, लंदन ज्ञात होता है, तो अज्ञान है।

मुमुक्षुः- परज्ञेय से ज्ञान है, वह सब अज्ञान।

उत्तरः- अज्ञान है। आहाहा! तुम्हारे ज्ञान की पर्याय में, ज्ञान किसका नाम? कि जो आत्मा को जाने उसका नाम ज्ञान कहा जाता है। आत्मा को जानना छोड़ दे वह तो अज्ञान हो गया। वह तो है अनंतकाल से, तो दुःखी होता है। उसे पलटाकर अब अंदर में जाना है। **इसप्रकार स्वयं ही स्वतः जानने-योग्य होने से वे ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप हैं।** यह ज्ञेय की व्याख्या। स्वयं स्वयं से ज्ञात होने योग्य। जाननहार भी स्वयं और जानने में आता भी स्वयं, इसलिये स्वयं ज्ञेय है। जाननहार इसलिये ज्ञाता-ज्ञान और जानने में आता है स्वयं आत्मा, पूरा आत्मा, तो स्वयं ज्ञेय हो गया, इसप्रकार! **और**, अब ज्ञाता की व्याख्या करते हैं। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता। तीन शब्द थे न? दो की व्याख्या हुई। अब तीसरे की व्याख्या

और स्वयं ही अपना जानने-वाला होने से, स्वयं ही अपना जाननेवाला हो जाने से नहीं।

मुमुक्षुः- होने से।

उत्तरः- ऐसा स्वभाव ही है। प्रत्येक आत्मा, स्वयं स्वयं को ही जानता है। मानता नहीं है। वरना जानता है तो स्वयं को। पर को जानता ही नहीं है।

मुमुक्षुः- आबाल गोपाल सबको।

उत्तरः- आबाल गोपाल सभी को बस! स्वयं का आत्मा ही ज्ञात होता है। मानता नहीं है वह तो दुःखी होता है।

मुमुक्षुः- इसलिये ही यह सब दुःख है न।

उत्तरः- इसलिये दुःख है, वरना जाने तो सम्यग्दर्शन हो जाये। उसका नाम ही आत्मदर्शन।

मुमुक्षुः- उसका नाम ही आत्मदर्शन।

उत्तरः- बस! यह, यह जो है न? यह २७१ कलश, अपूर्व है, अपूर्व है। इतने में समझ जाओ। इसमें अनुभव की विधि बतायी है। गुरुदेव कहेंगे, इस अनुभव की इसमें विधि है। आहाहा!

स्वयं ही स्वतः जानने-वाला होने से, हों! **ज्ञानमात्र भाव ही** स्वयं **ज्ञाता है।** आत्मा ज्ञाता है, आत्मा ज्ञाता दृष्टा है। लेकिन ज्ञाता की व्याख्या क्या? कि स्वयं स्वयं को जानता है इसलिये उसका नाम ज्ञाता है। इसे (पर को) जानता है इसलिये आत्मा का नाम ज्ञाता है ऐसा नहीं। ज्ञाता की व्याख्या की, स्वयं स्वयं को जानता है इसलिये स्वयं ज्ञाता है। आहाहा!

इसप्रकार ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता-इन तीन भावों से युक्त, युक्त अर्थात् सहित, **सामान्य विशेष स्वरूप**। सामान्य तो द्रव्य और विशेष उसकी पर्याय, ज्ञान की पर्याय - ऐसा पूरा आत्मा। ज्ञान **सामान्य विशेष स्वरूप वस्तु है**। सामान्य में भी ज्ञान और विशेष में भी ज्ञान। सामान्य में ज्ञान और विशेष में राग, ऐसा स्वरूप नहीं है आत्मा का। वह आत्मा का स्वरूप नहीं है, वह कल थोड़ी बात हमने की थी न? वह। **सामान्य विशेष स्वरूप वस्तु है। 'ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ'**। जो ऊपर का ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता- उन तीनों भावों युक्त मैं हूँ **ऐसा अनुभव करनेवाला पुरुष अनुभव करता है।**

जिसे आत्मा का अनुभव होता है वह इसप्रकार आत्मा का अनुभव करता है। अनुभवी पुरुष ऐसा कहते हैं कि हम आत्मा का ऐसा अनुभव करते हैं और तुम भी ऐसा अनुभव करो। ऐसा कहते हैं कि, हम तो अनुभव कर रहे हैं कि मैं ही ज्ञान, मैं ही ज्ञेय और मैं ही ज्ञाता हूँ। हम तो ऐसे आत्मा का अनुभव कर रहे हैं । तुम ऐसी आत्मा का अनुभव करो, ऐसा कहते हैं। हम पर के कर्ता नहीं और पर के ज्ञाता भी नहीं हैं। आहाहा! ज्ञाता की व्याख्या क्या कही? स्वयं स्वयं को जानता है इसलिए उसे ज्ञाता कहने में आता है। पर को जानता है इसलिये ज्ञाता है- ऐसा है? वह तो अज्ञान है। इतना भावार्थ पूरा हुआ। समयसार का जो श्लोकार्थ और भावार्थ है, वह पूरा हुआ। अब उसके ऊपर का प्रवचन, गुरुदेव का अब आता है। **कलश २७१ श्लोकार्थ के ऊपर प्रवचन।** अर्थात् पहला जो श्लोक है न, उसके ऊपर का प्रवचन। फिर भावार्थ के ऊपर का प्रवचन अलग है, इसीमें आएगा। पहला जो श्लोक है न? उसके ऊपर का है प्रवचन।

जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र ही नहीं जानना । ज्ञेयों को जानता है ऐसा आत्मा, मेरा स्वभाव नहीं है, आहाहा! **देखो, क्या कहते हैं? जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ,** ये गुरुदेव के अक्षरशः प्रवचन टेप पर से उतारे हुये हैं। **जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ वह छह द्रव्यों का जाननेवाला ज्ञानमात्र नहीं समझना।** कि छह द्रव्यों को जाननेवाला है ऐसा आत्मा हूँ ऐसा नहीं है, इसप्रकार! तो छह द्रव्य हैं न, कौन ना करता है? हैं। परंतु उनका मैं जाननेवाला हूँ या इसका जाननेवाला हूँ?

मुमुक्षुः- हों तो भले हों।

उत्तरः- भले हों! उसकी ना कहाँ है? छह द्रव्य भगवान ने कहे हैं। हैं। लेकिन मेरे ज्ञान के वे विषय हैं या मेरे ज्ञान का आत्मा विषय है? उसके ऊपर आधार है। विषय के फर्क से फर्क है। यदि ज्ञान में परपदार्थ विषय तुम लो, तो संसार है। और उस ज्ञान में आत्मा को विषय बनाओ तो मोक्षमार्ग है, बस!

मुमुक्षुः- बहुत संक्षिप्त व्याख्या।

उत्तरः- संक्षिप्त व्याख्या।

मुमुक्षुः- पर के सामने देखो तो संसार।

उत्तरः- संसार।

मुमुक्षुः- और इसके सामने देखो तो मोक्ष।

उत्तरः- मोक्ष! बस! इसकी संक्षेप में व्याख्या इतनी ही है। अज्ञानियों ने लंबा-लंबा किया है। अज्ञानियों ने लंबा-लंबा किया है।

मुमुक्षुः- वह इतनी भूल से अनादि से भटकता है।

उत्तरः- हाँ! इतनी भूल से हों! इतनी ही भूल से अनादि से भटकता है बस! एकदम सत्य बात है। इतनी ही भूल है, आहाहा! करने की बात तो इसमें कहीं आती ही नहीं है। लेकिन जानने की बात भी नहीं है इसमें, गई, आहाहा!

देखो, क्या कहते हैं? कि जो यह ज्ञानमात्रभाव मैं हूँ वह छह द्रव्यों के ज्ञानमात्र ही नहीं समझना। क्या कहा? लोक में जितने द्रव्य हैं-अनंतों सिद्ध और अनंतों निगोद के जीवों सहित जीव, आनंतनंत पुद्गल-देह, मन, वाणी, कर्म आदि, और धर्म, अधर्म, आकाश, काल-इसप्रकार छह द्रव्य - उनके द्रव्य, उनके **गुण**, उनकी **पर्याय वे मेरे ज्ञेय और मैं उनका ज्ञायक, ऐसा कहते हैं, नहीं जानना।**

मुमुक्षुः- सब कुछ निकाल दिया।

उत्तरः- निकाल दिया। एक रखा।

मुमुक्षुः- तीर्थंकर भगवान को निकाल दिया।

उत्तरः- निकाल दिया। तीर्थंकर, सिद्धों को निकाल दिया। उन्हें जानने के लिए रुकेगा न तो आत्मा को किस दिन जानेगा?

मुमक्षुः- आत्मा नहीं दिखेगा।

उत्तर:- नहीं दिखेगा आत्मा। उपकारी भगवान, तीर्थंकर साक्षात् विराजमान हों न, वे तेरे ज्ञेय नहीं हैं। तू उनको जानने रुकेगा तो तुझे शुभभाव होगा। संसार में भटकना मिलेगा।

मुमुक्षु:- दुःख का कारण बनेगा।

उत्तर:- दुःख का कारण बनेगा।

ऐसा नहीं जानना। अब उसका कर्तापना तो कहीं गया। परपदार्थ का कर्ता, वह तो यहाँ बात एजेंडा पर है ही नहीं, वह तो बात निकल गई। और वह ही शल्य जिसे छूट गया और ज्ञाता-ज्ञेय के व्यवहार में अटका है, उसे अब अंदर में ले जाते हैं। जिसकी कर्ताबुद्धि है उसे तो यह (बात) बैठनेवाली नहीं है। उसे तो बैठनेवाली नहीं है क्योंकि आत्मा ज्ञाता है और मानता है कर्ता इसलिये कर्ताबुद्धिवाले को तो यह नहीं बैठेगी। अब, ज्ञाता में आया लेकिन ज्ञाता पर का है, उसमें था, वह निकालकर अंदर में (स्वयं में) हाँ। यह दूसरा पाठ है। दो ही पाठ हैं। कर्ताबुद्धि और ज्ञाताबुद्धि छुड़ाते हैं। बस! पाठ दो ही हैं। तीसरी बात है ही नहीं। यह दो का ही विस्तार है।

मुमुक्षु:- पर का (कर्ता) और पर का जाननेवाला भी नहीं।

उत्तर:- नहीं।

मुमुक्षु:- इतना निर्णय कर ले जीव। इतना ही निर्णय करना रहा है अब।

उत्तर:- इतना ही निर्णय करना है। यदि यह यथार्थ निर्णय होवे तो उसे ज्ञान आत्मसन्मुख होकर अनुभव हो जाये। इतनी ही बात है। दो ही बात हैं।

जगत के पदार्थ स्वयं परिणमते हैं। स्वयं के परिणाम भी होने योग्य होते हैं। अपने परिणाम का भी कर्ता नहीं है, तो बाहर की बात करने की कहाँ बात रही। हें? अपने परिणाम को जानना बंद करने को कहते हैं, वे ज्ञेय नहीं हैं। आत्मा ज्ञेय है ऐसा कहते हैं। राग ज्ञेय नहीं है। राग होता है न वह जानने लायक नहीं है।

मुमुक्षु:- सब कुछ निकाल ही देते हैं। टुकड़े!

उत्तर:- **उसका कर्तापना तो कहीं गया। यहाँ तो कहते हैं - उनके (छह द्रव्य के) जानने मात्र मैं हूँ ऐसा नहीं जानना।** उनका जाननेवाला हूँ ऐसा शल्य मत रख अब। निकाल दे तू! **गजब बात है। भाई!** यह गजब बात है, यह साधारण बात नहीं है। ऐसा कहते हैं कि यह ऐसी सूक्ष्म बात है कि जिसका काल पक गया है, जिसके ज्यादा भव नहीं हैं, निकट भव्य जीव है, उसे ही यह बात बैठती है। वरना बैठनेवाली नहीं है। क्योंकि कर्ताबुद्धि और ज्ञाताबुद्धि का शल्य है, पड़ा है, और तर्क करता है कि केवली लोकालोक को जानते हैं और मैं पर को जानता हूँ। जानने में क्या दोष है? है दोष, मानता है गुण। मानता है गुण वह कहाँ से वापस पलटे?

मुमुक्षु:- नहीं पलटेगा। जानना-जानना लेकिन पर को जानना वह कहाँ से (आया)?

उत्तर:- पर को जानते हुये अनंतकाल गया। सुख आया? आया कहीं?

मुमुक्षु:- क्योंकि यहाँ कहा न कि जानना तेरा स्वभाव है बस। वह पकड़ लिया।

उत्तर:- पकड़ लिया। वह पकड़ लिया। जानना स्वभाव है, पकड़ लिया। और व्यवहार के वाक्य बहुत आते हैं शास्त्र में, कि शास्त्र को यदि आगे करे, समझ गये? और निश्चय के वाक्य को पीछे रखे।

तो हो गया। टोडरमल साहेब ने ये वाक्य लिखे हैं दो कि **व्यवहारनय द्वारा जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना**। आत्मा पर को जानता है वह व्यवहार का कथन है। वह श्रद्धान में से निकाल देना। श्रद्धान में रखेगा तो उपयोग तेरा बाहर ही भटका करेगा। भटका करेगा। यहाँ-वहाँ। यहाँ-वहाँ। यहाँ किस दिन जानेगा तू। ये स्टीकर तुम्हारे पास आ गये हैं? नहीं आये होंगे?

मुमुक्षुः- आ गये हैं।

उत्तरः- आ गये हैं, टोडरमलजी के?

मुमुक्षुः- हाँ।

उत्तरः- तो अच्छा है।

निश्चयनय द्वारा जो निरूपण किया हो उसको तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना तथा। व्यवहारनय द्वारा जो निरूपण किया हो उसको असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना। ये दो सूत्र हैं उसमें।

मुमुक्षुः- व्यवहारनय का विषय स्थान-स्थान पर भरा हुआ दिखता है।

उत्तरः- हाँ, और वह सच्चा लगता है। घड़ी के सामने देखो न तो यह घड़ी दिखती है न? बोलो! अब इसका क्या करना? इसका करना क्या? अज्ञान का पोषण करते हैं सभी इकट्ठे होकर।

मुमुक्षुः- इतना तो हमें करना चाहिए न?

उत्तरः- इतना...जानने में क्या दोष है? जानना तो स्वभाव है।

मुमुक्षुः- इतना तो हम करें न? दूसरा कुछ नहीं करते ।

उत्तरः- नहीं करते। घड़ी मेरी है ऐसा नहीं, लेकिन घड़ी में कितने बजे हैं वह तो मेरी शक्ति है न जानने की?

मुमुक्षुः- वह भूल हो गई।

उत्तरः- बड़ी भूल। साधारण भूल नहीं है यह, समझ गये? पढ़े-लिखों की भूल है विद्वानों की। यह जो विरोध किया, वह विद्वानों ने किया है। सामान्य व्यक्ति को तो इसमें पता ही न चले।

मुमुक्षुः- उसकी समझ में न आए।

उत्तरः- समझ में न आए कि किसका यह विरोध चलता है? विरोध की खबर नहीं पड़ती। **गजब बात है भाई! परद्रव्य के साथ ज्ञेय-ज्ञायकपने का संबंध भी निश्चय से नहीं है** शब्द पढ़ो तो जरा! गुरुवाणी है न ये तो। हें! मैं ज्ञाता और यह ज्ञेय, निश्चय से तेरा ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध पर के साथ नहीं है, आहाहा! **व्यवहारमात्र ऐसा संबंध है**। कथनमात्र। व्यवहार अर्थात् कथन, झूठा।

मुमुक्षुः- व्यवहारमात्र आया तो बस! व्यवहार से तो हमारा संबंध है न।

उत्तरः- संबंध है न, बस वह पकड़ लिया। लेकिन निश्चय से नहीं है ऐसा जो कहा वह भूल गया।

मुमुक्षुः- वह (बात) चूक गई। और यह व्यवहार-व्यवहार तो होता है न?

उत्तरः- व्यवहार तो होता है न? व्यवहारी वह जीव है और देखो यह दरवाजा है। यह दरवाजा है, इसे जानते हैं तो इसमें से निकला जाता है, इसमें दीवार में से नहीं निकला जाता, उसमें तो माथा

टकरा जाता है। इसलिए तू जानता है दरवाजे को। यह तर्क करता है तर्क, तर्क, समझ गये? ये सब तर्क हैं। इंद्रियज्ञान के पक्षपातवाले जीव तर्क करते हैं। उसमें रह जायेगा, आहाहा! ऐसा का ऐसा रह जायेगा, आहाहा! **व्यवहारमात्र ऐसा संबंध है, समझ में आता है कुछ? जैन तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है भाई!** जैन तत्त्वज्ञान सूक्ष्म है, आहाहा! वह तो पात्र जीव को पल्ले पड़ता है। दुर्भवी को पता नहीं चलता, आहाहा!

भाई! यह व्यवहार रत्नत्रय का राग होता है न धर्मात्मा को? यहाँ कहते हैं -भगवान आत्मा ज्ञायक, और व्यवहार रत्नत्रय का राग उसका ज्ञेय ऐसा वास्तव में है नहीं। व्यवहार रत्नत्रय के जो परिणाम होते हैं न, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग, वह ज्ञेय नहीं है तेरा! तेरे कर्ता का कर्म तो नहीं है लेकिन ज्ञान का ज्ञेय भी नहीं है। तेरे ज्ञान का वो ज्ञेय नहीं है, आहाहा!

मुमुक्षुः- यह बात बहुत आगे ले जाती है।

उत्तरः- आगे ले जाती है।

मुमुक्षुः- दृष्टि करानी है न?

उत्तरः- दृष्टि करानी है।

मुमुक्षुः- अनादि से इसमें तो पड़ा है।

उत्तरः- पड़ा है। पर को जानने का पक्ष तुझे है। है, वह तो अज्ञान है। वह तो अनादि का अज्ञान है। वह कोई नया नहीं है। पर को जानने पर तुझे आनंद आया?

मुमुक्षुः- नहीं।

उत्तरः- आता ही नहीं, तो पीछे मुड़ न? थोड़ी देर के लिए पीछे मुड़ कि पर को जानता नहीं, जाननहार जानने में आता है। कर न, ट्राय (try) तो कर। कोशिश तो कर तुझे आनंद आयेगा। दर्शन होंगे भगवान के। **राग उसका ज्ञेय ऐसा वास्तव में है नहीं।** लो। व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम कर्ता का कर्म तो नहीं, बहन! लेकिन ज्ञान के ज्ञेय भी नहीं हैं, आहाहा! तो ज्ञान का ज्ञेय कौन है?

मुमुक्षुः- आत्मा, स्वयं।

उत्तरः- **बारहवीं गाथा में व्यवहार 'जाना हुआ' प्रयोजनवान कहा**, समयसार का आधार देते हैं, **वह तो व्यवहार से बात है।** निश्चय से ऐसा नहीं है। व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम को, निश्चय से आत्मा उसे जानता ही नहीं है। जाने तो उसमय हो जाये, उस रागमय हो जाये, आत्मा। वास्तव में जाने तो, निश्चय से जाने तो, उसमय हो जाये। समझ गये? इसलिए वह झूठ है।

निश्चय से तो स्वपर को प्रकाशित करनेवाली अपनी ज्ञान की दशा ही अपना ज्ञेय है। देखो! ज्ञान की पर्याय अपना ज्ञेय है। ज्ञान तो ज्ञान है, लेकिन ज्ञान में ज्ञान ज्ञात होता है, ज्ञान की पर्याय, वह पर्याय ज्ञेय है। वह पर्याय कैसी? कि स्वपर का अंदर प्रतिभास होता है ऐसी। स्वपर को जाने ऐसी नहीं। स्व और पर दोनों जिसमें प्रतिभासित होते हैं ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, वह ज्ञान की पर्याय, ज्ञान की पर्याय भी है और वह ज्ञान की पर्याय ज्ञान का ज्ञेय भी है। ज्ञेय भी वह और ज्ञान भी वह। एक पर्याय के दो नाम। ज्ञान की पर्याय ज्ञान भी है और ज्ञान की पर्याय ज्ञेय भी है, अर्थात् यह (पर) ज्ञेय नहीं है, ऐसा।

मुमुक्षुः- अर्थात् पर्याय में अपने को ही जानता है इसलिए वह ज्ञेय है।

उत्तरः- वह ज्ञेय है। पर्याय ही ज्ञात होती है। पर्याय में जो (पर) जानने में आता है वह (पर) नहीं जानने में आता। पर्याय में जो (पर) जानने में आता है वह (पर) नहीं जानने में आता। ज्ञान की पर्याय जानने में आती है, वह बात सत्य है।

मुमुक्षुः- सब कुछ निकाल देते हैं, कहीं का कहीं।

उत्तरः- एक आत्मा रखा।

मुमुक्षुः- स्वयं और स्वयं की पर्याय।

उत्तरः- बस! बस! इतने में ही खेल है। खेल इतने में ही है। अन्यत्र कहाँ है? ज्ञानमय आत्मा और उसकी पर्याय में उपयोग होता है। उस उपयोग में आत्मा ज्ञात होता है, अनन्य होकर। ज्ञात हो रहा है बालगोपाल सभी को, बस! तो काम हो जाये। **रागादि परवस्तु-परद्रव्यों को उसके ज्ञेय कहना वह व्यवहार से है।** व्यवहार अर्थात् खोटा, झूठा। **निश्चय से उसका पर के साथ ज्ञेय ज्ञायक संबंध भी नहीं है।** निकाल दिया।

मुमुक्षुः- ज्ञेय-ज्ञायक का संबंध भी निकाल दिया।

उत्तरः- आहाहा! उसके साथ यह (पर) ज्ञेय और यह ज्ञान - ऐसा व्यवहार, ऐसा नहीं है। निश्चय से तो स्वयं ही ज्ञान और स्वयं ही ज्ञेय है, इसप्रकार। **अब पर के साथ उसका मेरेपने का -स्वामित्व का और कर्तापने का संबंध होने की बात तो कहीं उड़ गई**, आहाहा! वह तो कहीं गई। राग मेरा स्व और मैं उसका कर्ता और वह मेरा कर्म, वह बात तो कहीं गई! आहाहा! यह दुकान मेरी और पुत्री मेरी और लंदन का घर मेरा, वह तो कहीं का कहीं गया। यह देह तेरी नहीं है। परिणाम तेरे नहीं हैं। आहाहा! ममता छोड़ दे। परिणाम रह जाये, देह रह जाये। सब रह जाए भले लेकिन ममता छूट जाती है।

मुमुक्षुः- मेरापना छूट जाता है।

उत्तरः- मेरापना छूटता है। यह जैनदर्शन का मर्म है। समझ गये? मेरापना छूट जाता है। करोड़ों रूपये रह जाते हैं, चक्रवर्ती का राजपाट रह जाता है। मेरापना छूटा। बस! मेरापना यहाँ आया न?

मुमुक्षुः- जैसा है ऐसा ही है।

उत्तरः- है ऐसा का ऐसा!

मुमुक्षुः- मेरापना था...

उत्तरः- वह खींच लिया। मेरापना ऐसे तूने खींचा और मेरापना कहाँ स्थापित किया?

मुमुक्षुः- अपने में!

उत्तरः- बस!

मुमुक्षुः- वहाँ से खींचकर यहाँ ले गया।

उत्तरः- बस! इतना ही है। मेरापना छूटता है। संयोगों में फेरफार करने की शक्ति आत्मा में नहीं है। राग रह जाता है, राग के निमित्त रह जाते हैं, कुटुंब कबीले रह जाते हैं, देह रह जाती है, आठ

कर्मों का संयोग रह जाता है, समझ गये? राजपाट भी रह जाता है, हो तो। न हो तो करोड़ रूपया भी रह जाता है। भले रहे उसमें। ममता छूट गई। मेरे नहीं हैं, आहाहा! शुभाशुभ भाव मेरे नहीं हैं। शुभाशुभ भाव रह जाते हैं।

मुमुक्षुः- भाव होते हैं।

उत्तरः- भाव होते हैं लेकिन मेरापना?

मुमुक्षुः- मेरापना छूट गया।

उत्तरः- भाव तो होते हैं। क्योंकि वीतराग तो हुआ नहीं। यथाख्यात चारित्र हुआ नहीं। अरिहंत हुआ नहीं। मुनि हुआ नहीं। इसलिए गृहस्थ के योग्य पाप और पुण्य के परिणाम आते हैं। लेकिन वे परिणाम मेरे, वह गया। वह गया और फिर वह मेरा ज्ञेय वह भी गया।

मुमुक्षुः- वह भी गया!

उत्तरः- (हाँ)। कर्ता का कर्म तो नहीं लेकिन ज्ञान का ज्ञेय भी नहीं है, आहाहा! ऐसी ऊंची बात इसमें है।

मुमुक्षुः- बहुत ऊंची बात है।

मुमुक्षुः- चरम सीमा की।

उत्तरः- पराकाष्ठा की। यह पहले में पहली इकाई है, सम्यग्दर्शन होने की। यह सम्यग्दर्शन कैसे हो अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को? ज्ञान बाहर में भ्रमता है न? वह भटकता हुआ ज्ञान अंदर में मुड़ जाये। उपकार किया है, गुरुदेव ने। बहुत उपकार किया है। ऐसे प्रवचन!

निश्चय से पर के साथ उसे ज्ञेय-ज्ञायक संबंध भी नहीं है। अब पर के साथ उसका मेरेपने का-स्वामित्व का और कर्तापने का संबंध होने की बात तो कहीं उड़ गई। दूर चली गई। **समझ में आया?** आहाहा! अब पैराग्राफ बदलते हैं।

आहाहा! कहते हैं - जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र ही नहीं जानना। तो किस तरह से है? ज्ञेय का ज्ञाता नहीं है वह आत्मा, परज्ञेय का ज्ञाता नहीं है, तो आत्मा का स्वरूप क्या है? वह समझाते हैं। **ज्ञेयों के आकाररूप होती ज्ञान की कल्लोलें** अर्थात् पर्यायरूप **परिणमित होता हुआ वह ज्ञान- ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना। (अर्थात् स्वयं ही ज्ञान, स्वयं ही ज्ञेय और स्वयं ही ज्ञाता - इसप्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावयुक्त वस्तुमात्र जानना चाहिये)।** यह इतने शास्त्र के शब्द हैं। अब, उसके ऊपर का प्रवचन। उसके ऊपर का प्रवचन आता है। चौथा पेज है-चौथा पेज है न? ऊपर चार है। **'ज्ञेय के आकाररूप होनेवाले ज्ञान की कल्लोलरूप से परिणमित'** इसमें ऐसा समझाया है कि **ज्ञेय के आकाररूप** अर्थात् परपदार्थ वे ज्ञेय हैं, उनके आकाररूप अर्थात् जैसा उनका स्वरूप होता है, काला, सफेद, खट्टा, मीठा, वह ज्ञेयों का स्वरूप कहलाता है। आकार अर्थात् स्वरूप। वह जो स्वरूप इसमें झलकता है, उसके **आकाररूप होनेवाली ज्ञान की** पर्यायें, **कल्लोलें** अर्थात् पर्यायें, उनके संबंधवाला ज्ञान, ज्ञेय के संबंधवाला जो ज्ञान, पर्याय, वह **परिणमित होता हुआ यह व्यवहार से कहा है, हों!** उसके साथ उसका संबंध नहीं है। निमित्त देखकर वह ज्ञात होता है, ऐसा व्यवहार से कहा लेकिन ऐसा है नहीं। देखो, निषेध करेंगे।

मुमुक्षुः- वह काला-सफेद जानने में आता है वह स्वयं नहीं है।

उत्तरः- वह काला-सफेद तो वह स्वयं नहीं है लेकिन काला-सफेद जिसमें ज्ञात होता है ऐसा ज्ञान भी स्वयं का नहीं है। वह संबंध हटाना है। उसे बाहर का संबंध उसके साथ का, ज्ञेय के संबंध से होता है ज्ञान, वह उसे जानता है ऐसा कथन में कहने में आता है, लेकिन ऐसा है नहीं। देखो! इसमें है। **यह व्यवहार से कहा है हों! वस्तुतः तो ज्ञेयों का, छह द्रव्यों का जैसा स्वरूप है उनको जानने के विशेषरूप से परिणमना।** पर्यायरूप से परिणमना। वे जिसमें ज्ञात होते हैं ऐसी पर्यायरूप से स्वयं परिणमता है **वह ज्ञान की स्वयं की दशा है। और वह ज्ञान के स्वयं के सामर्थ्य से है।** वे छह द्रव्य हैं इसलिए उनका ज्ञान होता है ऐसा नहीं। छह द्रव्य का जानना भी अपनी सामर्थ्य से, अंदर में से आता है, ऐसा! वह स्व का या पर का, उसका जो जानना आता है, वह ज्ञान की शक्ति में से आता है। सामर्थ्य, शक्ति है।

'ज्ञेयों के आकाररूप होता हुआ ज्ञान' देखो, ऊपर कहा था न? ज्ञेयों के स्वरूप, जैसे ज्ञेय हैं, कोयला हो तो कोयला, सोना, चांदी, घोड़ा, हाथी जिस प्रकार से पदार्थ हों उस संबंधित होता हुआ ज्ञान। **'ज्ञेय के आकाररूप होता हुआ ज्ञान' यह तो कथनमात्र है।** कथनमात्र है। **'ज्ञेय के आकाररूप होता हुआ ज्ञान'** कथनमात्र है।

मुमुक्षुः- अर्थात् ज्ञेयाकाररूप हुआ ही नहीं?

उत्तरः- हुआ ही नहीं। ऐसा कहना चाहते हैं।

मुमुक्षुः- ज्ञेयाकाररूप ज्ञान हुआ ही नहीं।

उत्तरः- (ज्ञेयाकाररूप ज्ञान) हुआ ही नहीं है। वह तो ज्ञानाकाररूप है। वह तो ज्ञानाकार छोड़ा नहीं उसने। और ज्ञेयाकार हुआ नहीं। होनेवाला भी नहीं है। लेकिन ज्ञेय को देखकर ज्ञेयाकार हुआ ऐसा कहने में आता है।

मुमुक्षुः- आरोप है?

उत्तरः- आरोप, बस! ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। कथनमात्र, अर्थात् उसमें कुछ नहीं है। कथनमात्र अर्थात्?

मुमुक्षुः- मात्र कहने के लिए है।

उत्तरः- (कथनमात्र अर्थात्) कहनेमात्र मामा, वह ननिहाल की पूर्ति नहीं करता। तुम्हारे गाँव का, तुम्हारी पुत्री का विवाह होगा, समझ गये? तो उसके गाँव के होते हैं न? उसके मामा के गाँव के कोई व्यक्ति आवें, तो मामा आओ-आओ ऐसा कहते हैं। गाँव में, हमारे गाँव में ये रिवाज है। ऐसा कि मामा आओ।

मुमुक्षुः- गाँव के सभी मामा कहते हैं।

उत्तरः- लेकिन वह मामा कहीं ननिहाल की पूर्ति करता है? (नहीं)। इसलिए कहनेमात्र का मामा, कथनमात्र। कहनेमात्र मामा, इसप्रकार हमारे यहाँ कहा जाता है। कहनेमात्र मामा, मात्र कहने के लिए, सच्चा मामा नहीं। ऐसे कहते हैं **'ज्ञेय के आकाररूप हुआ ज्ञान' - यह तो कथनमात्र है।** नीलम, 'ज्ञेयों के आकाररूप हुआ ज्ञान' वह तो कथनमात्र, कहनेमात्र है। ऐसा है नहीं, आहाहा! कितनी

स्पष्टता करते हैं।

मुमुक्षुः- क्योंकि पर जानने में आता ही नहीं अतः ज्ञेयाकाररूप होता ही नहीं।

उत्तरः- होता ही नहीं।

मुमुक्षुः- ज्ञायक ही ज्ञात होता है इसलिए ज्ञानाकाररूप...

उत्तरः- वह ज्ञानाकाररूप ही रहा है, ज्ञेयाकार होता नहीं है। लेकिन निमित्त को देखकर उपचार से, व्यवहार से ऐसा कहते हैं,कथनमात्र है। अन्यथा वास्तविक ऐसा नहीं है। ऐसा वास्तविक ऐसा नहीं है। यह अलमारी ज्ञान में जब ज्ञात होती है तब अलमारी को जानता है - ज्ञेयाकार हुआ, ऐसा कथनमात्र है, लेकिन ऐसा नहीं है। क्योंकि उस समय ज्ञान है न ज्ञान! तो ज्ञान की व्याख्या हमने क्या की? कि ज्ञायक को जाने उसका नाम ज्ञान। तो ज्ञान तो ज्ञायक को ही जानता है। इसको (पर को) नहीं जानता। फिर भी उसे (पर को) निमित्त देखकर उसे (पर को) जानता है, ऐसा उपचार से कहने में आता है। कथनमात्र है। इस बात में कुछ माल नहीं है, सौ प्रतिशत झूठा है वह कथन।

मुमुक्षुः- ज्ञान का ज्ञेय बदलता नहीं है।

उत्तरः- बदलता ही नहीं है। ज्ञान का विषय बदलता ही नहीं। ज्ञान विषय पलटता ही नहीं।

प्रश्नः- ज्ञान में किसी समय आत्मा जानने में आये और किसी समय अलमारी जानने में आये?

मुमुक्षुः- ऐसा नहीं है।

प्रश्नः- ज्ञान में किसी समय आत्मा जानने में आये और किसी समय सीमंधर भगवान की प्रतिमा जानने में आये? ज्ञान में?

मुमुक्षुः- कभी भी नहीं।

मुमुक्षुः- ऐसा बनता नहीं।

उत्तरः- ऐसा बनता नहीं है।

मुमुक्षुः- इतना बिठाना पड़ेगा।

उत्तरः- (हाँ!) बहन! देखा ! इतना बिठाना पड़ेगा। वह कठिन है ऐसा (वे) कहते हैं, यह बात जरा थोड़ी कठिन है इसलिए बिठानी पड़ेगी। यदि बैठ गई कि ज्ञान का विषय पलटता ही नहीं है, (ज्ञान का विषय) एक आत्मा ही है। प्रत्येक समय, किसी भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, चाहे जहाँ जाओ, लंदन में जाओ, राजकोट में जाओ, नैरोबी में जाओ, जामनगर जाओ, गाँव में जाओ, जहाँ देखो, वहाँ तुम्हारे ज्ञान में ज्ञायक ही ज्ञात होता है। आत्मा ज्ञात होता है। ऐसी एक घटना घटी। जंगल था। मुनिराज ध्यान कर रहे थे गुफा में और अन्य पाँच-सात मुनि वहाँ से निकले, समवशरण में जाने के लिए। समवशरण तीर्थंकर भगवान का था वहाँ जाने के लिए विहार करके जा रहे थे। उसमें मुनियों को ख्याल आया कि हमारे मुनि हैं, हमारे संघ के। और हम उन्हें भी कहें कि हमारे साथ, हम जा रहे हैं समवशरण में, आप भी आओ। अतः दो मुनियों को भेजा अंदर गुफा में और अन्य मुनि प्रस्थान कर गये। उनको तुम साथ में लेते आना, हम जाते हैं। तो कहा कि ठीक है। उन्होंने मुनिराज को विनती की, उनके चरण छुए। वे जबरदस्त मुनि थे आचार्य, महान समर्थ ज्ञानी। उनके चरणों में ढोक दी और कहा साहेब! हमारे गुरु साथ में थे वे उस तरफ आगे गये हैं और हमें यहाँ आपसे विनती करने के लिए छोड़ गये हैं। कहा,

क्या है बोलो? कि हमारा पूरा संघ समवशरण में जा रहा है। वे हमारे मूल सर्वज्ञदेव गुरु कहलाते हैं। दिव्यध्वनि सुनने के लिए जा रहे हैं और आप भी हमारे साथ पधारिये। इसलिए विनती करने के लिए आपके (पास) आया हूँ। तो उन्होंने कहा बैठो जरा! वे बैठ गये। कि देखो, मैं समवशरण में आऊँ उसमें तो मेरी ना होवे नहीं । लेकिन समवशरण में तो मैं आऊँ, तब भी मेरा आत्मा जानने में आयेगा, मुझे समवशरण तो जानने में आयेगा नहीं। मुझे तीर्थंकर प्रभु जानने में नहीं आयेंगे, मुझे तो मेरे ज्ञान में आत्मा ही जानने में आयेगा, वहाँ बैठा होऊँगा तब। यहाँ बैठा हूं तो ज्ञान में आत्मा जानने में आता है। तो फिर मुझे वहाँ जाने का क्या अर्थ? यदि विषय बदलता हो, मेरे ज्ञान का विषय इस समय आत्मा, और फिर मेरे ज्ञान का विषय सीमंधर भगवान हो जायें, वे मुझे जानने में आ जायें तो तो तुम्हारे साथ आऊँ। (ये सुनकर) वे शांत हो गये, वे शांत हो गये, ओहोहो! इसमें तो अपना काम हो गया ! उनकी समझ गहरी उतर गई। और वे यहाँ जम गये। वे दोनों मुनि भी समवशरण में नहीं गये। और जहाँ थोड़ी देर हुई, दो-चार घंटे, वहाँ तीनों को केवलज्ञान हो गया। और वहाँ पता चला कि मुनि गये थे न, कि उन दो मुनियों को हम छोड़कर आये थे वे अरिहंत हो गये और जिन्हें वो लेने के लिए गये थे वे अरिहंत हो गये हैं। यह हुआ क्या? यह क्या चमत्कार हुआ? समझ गये? तब सीमंधर भगवान को पूछा कि यह क्या हुआ? तो कहा, इस तरह उन्हें लेने के लिए गये थे और उन्होंने जवाब दिया कि मैं तीर्थंकर भगवान के यहाँ जाऊंगा तो भी मेरा आत्मा ही जानने में आयेगा। ज्ञेय बदलेगा नहीं। और यहाँ हूँ, तो भी मेरा?

मुमुक्षुः- ज्ञेय, ज्ञेय, वही का वही रहनेवाला है।

उत्तरः- लंदन में हो तो भी आत्मा ज्ञेय, राजकोट में आओ तो?

मुमुक्षुः- तो भी आत्मा ज्ञेय।

उत्तरः- बस! इसलिए मैं अब तुम्हारे साथ नहीं आता। वे दोनों भी बैठ गये। ध्यान में मग्न हो गये। केवलज्ञान का भड़का हो गया। उनको पछतावा हुआ कि देखो हमने उनको छोड़ा लेकिन उनका तो काम हो गया। समझ गये!

ज्ञेय बदलता नहीं। ज्ञेय बदले तो ज्ञान नहीं कहलाता। ज्ञेय बदलता हो तो इन्द्रियज्ञान कहलाता है लेकिन ज्ञान नहीं कहा जाता, अज्ञान कहा जाता है। इंद्रियज्ञान = अज्ञान। इन्द्रियज्ञान अर्थात्? इन्द्रियज्ञान तो विषय बदलता है न? स्पर्श, रस, गंध, वर्ण प्रत्येक का उसका विषय अलग-अलग है न? स्पर्शनेन्द्रिय का विषय ठंडी गरम अवस्था। रस का विषय खट्टे-मीठे को जानना । (घ्राणेन्द्रिय) सुगंध-दुर्गंध को जानता है। आँख रूप को जानती है। कान सुनता है आवाज को। अर्थात् विषय बदलता है पाँच इन्द्रियों का। ज्ञान का विषय बदलता नहीं। ज्ञान का विषय अभेदरूप से ज्ञायक ही (है)। ज्ञेयाकार अवस्था में अभेद ज्ञायक ही ज्ञात होता है। ज्ञात हुआ ही करता है। उसे सविकल्पदशा या निर्विकल्प कुछ अड़ता (बाधक) नहीं है। आहार करते हों मुनिराज तो भी ज्ञान में आत्मा जानने में आता है, आहाहा! ऐसा, इसका नाम ज्ञान है। विषय पलटे, ज्ञेय पलटे (तो वह ज्ञान नहीं है)। कि तुम भले, आये हो कहाँ से आये हो? कि हम जूनागढ़ से आये हैं। तो गिरनार तुमने देखा था? कि हाँ गिरनार दर्शन किये। फिर अब इस समय? कि आपको देखते हैं। तो हम पूछते हैं। तो ज्ञेय बदला न तुम्हारे ज्ञान में?

तो कहा कि हाँ! बदलता ही है न ज्ञेय तो? वहाँ थे तो गिरनार जानने में आता था, अब यहाँ आये तो आप जानने में आते हो। झूठ है! मार्मिक बात है यह। ऐसी गहरी और ऊँची बात, आहाहा! यह गुरुदेव कर गये हैं। गुरुदेव का कहा हुआ ही कहते हैं, हमारे घर की बात नहीं करते, आहाहा! है तो घर की (आत्मा की) बात लेकिन गुरुदेव का नाम लेकर ही कही जाती है न? उनका नाम लेकर कही जाती है न? है तो हमारी (आत्मा की) बात।

मुमुक्षुः- यह तो आत्मा की बात है।

उत्तरः- आत्मा की ही बात है।

मुमुक्षुः- घर की अर्थात् आत्मा की ही बात है।

उत्तरः- आत्मा की ही बात है। है तो आत्मा की बात। लेकिन गुरुदेव का नाम लेते हैं तो श्रद्धा बैठती है दूसरों को, ऐसा! आहाहा! गजब के पुरुष हो गये हैं, गजब के पुरुष! "न भूतो न भविष्यति" कि ऐसे पुरुष होंगे? कि नहीं।

मुमुक्षुः- कौनसा पुण्य पका हमारा कि ये पुरुष आत्मा की बात जाहिर करके गये!

उत्तरः- हमने पूर्व में आत्मा को याद किया था। इसलिए उसमें शुभभाव हुआ। उसमें पुण्य बंध गया। उसमें महापुरुष का, ज्ञानी का योग होता है, समझ गये? और उसमें यदि रुचि जागे, पुण्य ने तो फल दिया, संयोग दिया। उसने तो संयोग दिया। गुरुदेव मिले। अब उसमें आत्मा की रुचि करके अपना काम करो तो काम का है। वरना किस काम का?

मुमुक्षुः- वरना तो यह ... हो गया, नहीं तो...

मुमुक्षुः- तब गुरुदेव को निमित्त कहते हैं। नहीं तो...

उत्तरः- तब उन्हें निमित्त कहा जाता है, उन्हें जाना कहा जाता है, इसे (अपने को) जानूं तो। गुरुदेव को जानो, तो वह जानना नहीं है। गुरुदेव मना करते हैं वह। उन मुनि ने नहीं कहा कि मैं तुम्हारे साथ आऊँ, मुझे दिक्कत नहीं है। वहाँ आऊँगा ना तो भी मुझे तो ज्ञायक ही जानने में आयेगा, मेरे उपयोग में। मेरे उपयोग में तो तीर्थंकर हैं नहीं। वे जानने में आते हैं, वह कहाँ से (आया)? वे जानने में नहीं आएंगे मुझे। कहते हैं ऐसा? तो कहते हैं हाँ! तुम कहते हो तो आऊं, यदि तीर्थंकर भगवान ज्ञात हो जायें मेरे ज्ञान में। तो वे भी मुनि ही थे, वे कहाँ से कहें? ना! यह बात आपकी सत्य है, आत्मा ही जानने में आयेगा। वहाँ जाओगे तो भी और यहाँ बैठे तो भी आत्मा। तो फिर यहीं पर स्थिरता करो न। ध्यान में बैठ जाओ न, आहाहा! ऐसी बात है। यह मार्मिक बात है। आत्मा का दर्शन कैसे करना? उसकी यह बात है। और दर्शन में रुकावट यह है 'मैं पर को जानता हूँ', वह रुकावट है। बड़ी रुकावट है। एक कर्ता, है जाननेवाला और मानता है कर्ता, वह रुकावट बड़ी । उसमें से वह खिसका तो इसमें पर का जाननेवाला । हो गया, वही का वही रहा, अज्ञान। लेकिन यह है न, यह विषय उसे ग्रासपिंग (grasping) करनेवाले, ग्रहण करनेवाले, वे कम हैं। कम ही होते हैं, तीनोंकाल कम होते हैं। सूक्ष्म बात समझनेवाले कम होते हैं। होते हैं अवश्य, संख्या कम होती है, बस! चिंतवन का विषय है। चिंतवन करके बिठाने का विषय है अंदर में। अंदर में बिठाने का है। अपना हित कैसे हो? पर को जानते हुये अनंतकाल गया, हित हुआ नहीं, आनंद आया नहीं। स्व को जानने पर आनंद आयेगा। वह प्रूफ

(proof) है। वह तो प्रमाण है।

मुमुक्षुः- बहुत सुंदर बात है! ज्ञान का विषय पलटता नहीं है।

उत्तरः- और विषय पलटे तो ज्ञान नहीं है किन्तु अज्ञान है। खाते-पीते-चलते-बैठते, जाननहार ही जानने में आता है। साधक को दो ज्ञान प्रगट हुए हैं। एक तो था इन्द्रियज्ञान और दूसरा आत्मज्ञान, अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हुआ। अज्ञानी के पास एक ही प्रकार का ज्ञान। केवली के पास भी एक ही प्रकार का ज्ञान। साधक के पास दो प्रकार के ज्ञान। अज्ञानी के पास एक प्रकार का- अज्ञान, ज्ञान अर्थात् इन्द्रियज्ञान। उसके पास इन्द्रियज्ञान और केवली के पास अकेला अतीन्द्रियज्ञान। (केवली के पास) अकेला अतीन्द्रियज्ञान, उसके (अज्ञानी) पास अकेला इन्द्रियज्ञान। और साधक हुआ सम्यग्दृष्टि, दो प्रकार का ज्ञान। एक इन्द्रियज्ञान भी है ही और अतीन्द्रियज्ञान भी है। थोड़ा राग भी है, थोड़ा वीतरागभाव भी है। थोड़ी शुद्धता भी प्रगट हुई है, थोड़ी अशुद्धता भी है। अपूर्व बात है। इसमें समय लगाने जैसा है। इसमें पुरुषार्थ खिलाने जैसा है, आहाहा! ज्ञान उसका नाम कि (जिसका) विषय बदले नहीं।

मुमुक्षुः- अर्थात् ज्ञान ज्ञेयाकाररूप होता नहीं। ज्ञान, ज्ञानाकाररूप ही रहता है। क्योंकि विषय बदलता नहीं है न उसका।

उत्तरः- इसलिये ज्ञानाकार रहता है। ज्ञेयाकार होता नहीं। उसे ज्ञेयाकार हुआ (ऐसा कहना) कथनमात्र है।

मुमुक्षुः- वह तो भाई! निमित्त का ज्ञान कराया है उसे।

उत्तरः- निमित्त देखकर व्यवहार से, उपचार से कहा जाता है। कथनमात्र अर्थात् कुछ नहीं, आहाहा! ज्ञान में विषय बदलता नहीं है, उसका कारण क्या है, पता है? उसका कारण क्या है? कि ज्ञान आत्मा का है। क्या कहा? ज्ञान में विषय बदलता नहीं है, उसका कारण क्या? कि ज्ञान आत्मा का है इसलिए विषय बदलता नहीं। सुनना ! अब, यदि ज्ञान पर का हो तो तो विषय बदले। ख्याल आया कुछ? यदि ज्ञान पर का हो, पर ज्ञेय का, पर ज्ञेय से ज्ञान होता हो, पर का हो तो-तो विषय पलटा करे। लेकिन विषय पलटता है वह ज्ञान ही नहीं है। एक को जाना, तृप्ति नहीं, दूसरे को जानने की इच्छा हुई, इसप्रकार चक्कर मारता रहता है। ज्ञेय से ज्ञेयांतर, ज्ञेय से ज्ञेयांतर, ज्ञेय से ज्ञेयांतर, वह ज्ञान ही नहीं है, आहाहा! जिस ज्ञान में विषय बदले वह ज्ञान नहीं है। जिस ज्ञान में विषय बदले नहीं, आत्मा आया वह आया दृष्टि में, अनुभव में आया वह आया ज्ञायक कि ज्ञायक हूँ। फिर सोते-बैठते-चलते-फिरते भी ज्ञान का विषय बदलता नहीं है। तब विषय बदलता है, कौन बदलता है? कि इन्द्रियज्ञान। वह ज्ञान मेरा नहीं है, इन्द्रियज्ञान मेरा नहीं है। इन्द्रियज्ञान (विषय) पलटा करेगा। जब तक परमात्मा नहीं होता तब तक एक अंश विषय नहीं बदलता। और दूसरा अंश जो है, इन्द्रियज्ञान का, वह (विषय) बदलता रहेगा, लेकिन वह ज्ञान ही नहीं है मेरा, वह तो ज्ञेय है।

मुमुक्षुः- किसी के संग के बिना, वह मन का संग हो तब तक।

उत्तरः- वह ज्ञेय है। वह इन्द्रियज्ञान है, आहाहा! ज्ञान आत्मा का है इसलिए आत्मा को निरंतर जाना करता है। निरंतर जाना करता है इसलिए उसका विषय नहीं बदलता, आहाहा! और जो ज्ञान

विषय बदलता है इसे जानूं इसे जानूं, उसे जानूं, उसे जानूं, वह ज्ञान ही नहीं है, वह इन्द्रियज्ञान है। उघाड़ है वह तो, आहाहा! कि अब क्या जानने में आता है? प्रवचनसार। अब क्या जानने में आता है? नियमसार। अब क्या जानने में आता है? कि समयसार। ऐसा नहीं है, विषय बदलता नहीं उसका।

मुमुक्षुः- जो जिसका हो वह उसे प्रसिद्ध करे।

उत्तरः- उसे ही प्रसिद्ध करे न! ज्ञान तो आत्मा का है।

मुमुक्षुः- आत्मा का है, इसलिए आत्मा को प्रसिद्ध करता है।

उत्तरः- समय-समय आत्मा को प्रसिद्ध करता है इसलिए विषय बदलता नहीं है। यदि ज्ञान पर का हो तो-तो विषय बदले, लेकिन पर का या पर से तो होता नहीं। और पर का विषय बदलता है तो वह ज्ञान नहीं, अज्ञान है, इन्द्रियज्ञान है। इन्द्रियज्ञान ज्ञान ही नहीं है।

एक पुस्तक बाहर प्रकाशित होने वाली है अभी। २६० पृष्ठ की छपती है, अहमदाबाद में। एक सप्ताह में यहाँ आ जायेगी। उसका नाम है 'इन्द्रियज्ञान... ज्ञान नहीं है'। 'इन्द्रियज्ञान.... ज्ञान नहीं है' सभी शास्त्रों के आधार उसमें रखकर पुस्तक तैयार हुई है। बहन ने खास मेहनत की है। पुस्तक छप गई है लगभग। दो चार छह दिनों में छप जायेगी। एक सप्ताह में आ जायेगी। ज्यादा में ज्यादा यदि ठगा हुआ हो जीव, तो वह पुण्य से धर्म मानता है। और पंडित ज्ञान से आत्मा का ज्ञान मानते हैं, शास्त्र से ज्ञान मानते हैं। शास्त्रज्ञान को ज्ञान मानते हैं। शास्त्रज्ञान ज्ञान नहीं है, वह तो ज्ञेय का ज्ञान हुआ। आत्मा का ज्ञान कहाँ है?

मुमुक्षुः- ज्ञेय का ज्ञान होने से वह ज्ञेय ही है।

उत्तरः- वह ज्ञेय ही है। वह ज्ञेय ही हो गया। ज्ञेय के सन्मुखवाला जो ज्ञान वह स्वयं ज्ञेय हो गया। और आत्मा की सन्मुखतावाला ज्ञान वह ज्ञान है। जिसमें आत्मा प्रसिद्ध हो, आत्मा जानने में आये, वह ज्ञान है। जिसमें आत्मा तिरोभूत हो जाये, आत्मा जानने में नहीं आये और पर जानने में आया करे, तो वह ज्ञान कहाँ है? वह तो अज्ञान है। वह तो संसार का कारण है। चारगति में (भटकने का कारण है)।

ॐ